चतुर्विंशति पट्ट या चौबीसी

(राज्य संग्रहालय लखनऊ के संग्रह पर आधारित)

शैलेन्द्रकुमार रस्तोगी

चतुर्विंशति पट्ट अपरनाम चौबीसी का अपना हीम हत्व है। बौद्ध[1] एवं वैदिक मान्यताओं की तरह चौबीस अर्हन्त जैन जगत में भी सुनिश्चित हैं। जैन मान्यता के अनुसार अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कालचक्र की घूमती गतियाँ हैं तथा प्रत्येक गति में यथा पहले, वर्तमान एवं भविष्य में तीर्थंकर चौबीस चौबीस रहे हैं और होंगें। इन चौबीस तीर्थंकरों को सनातनी ईश्वर ने उच्चपद प्रदान किया है। कोई भी अपना उत्थान कर बिना किसी की दया, कृपा के उस पद को प्राप्त कर सकता है। ऐसी जैन धर्म की मान्यता है।

जैन प्रतिमाओं का अध्ययन करते समय यह सुस्पष्ट हो उठता है कि शिलापट्टों पर तीर्थंकर प्रतिमाएं सबसे पहले बननी प्रारंभ हुई, भले ही इनका उल्लेख खारवेल के लेख में दूसरी शती ई. पू. या सिन्धु संस्कृति या लोहानीपुरादि से यत्र-तत्र उपलब्ध किंचिद् अभिलेखीय एवं पुरातात्विक प्रमाणों से होता है। किन्तु शिलापट्टों पर क्षत्रप (सोडास) के संवत् ७२ के समय से तो इन प्रतिमाओं की अविच्छिन्न परम्परा दृष्टिपथ में आ ही जाती है[2] और इसी के साथ ही जैन प्रतिमा के विद्यार्थी का शोधपथ सरल एवं सुगम हो जाता है।

यूं तो कुषाण काल के आरंभ से ही तीर्थंकरों की स्वतन्त्र एक, चौमुखी या आयागपट्टादि पर प्रतिमाएं पाते ही हैं। ये लेख सहित या लेख रहित दोनों ही हैं। किन्तु शिलापट्टों के बीच में इनका विलेखन पाते हैं।[3] इस प्रकार से ऐसा प्रतीत होता है कि चौबीस तीर्थंकरों को पृथक्-पृथक् बनाने के स्थान पर एक ही शिलापट्ट पर तीन, पाँच या चौबीस तीर्थंकरों का कलाकारों को बनाना अभीष्ट हो गया। ठीक इसी भाव को साहित्य के मध्ययुग में "चतुर्विंशति जिनस्तवन (१० वीं शती), चतुर्विंशति जिनस्तुति धर्मघोषकृत तथा जिनप्रभसूरि कृत चतुर्विंशति जिनस्तुति (१४ वीं शती) रचा गया।

इस प्रकार जैन संस्कृति के मूर्धन्य विद्वान विद्यावारिधि श्रद्धेय डा. ज्योतिप्रसाद जैन ने इन पंक्तियों के लेखक को बतलाने की कृपा की कि आयागपट्टों पर जिस प्रकार तीर्थंकरों को बनाया जाता था उसी प्रकार परवर्तीकमल में चौबीसीपट्ट बनने लगे। यह अभिमत समीचीन होने के कारण ग्राह्य प्रतीत होता है। अस्तु चतुर्विंशति पट्ट या चौबीसी अस्तित्व में आयी। राज्य संग्रहालय लखनऊ में प्रस्तरीय छह पूर्ण और दो खंडित चौबीसी हैं। ये मथुरा, महोबा, श्रावस्ती के अतिरिक्त मध्यप्रदेश के ग्वालियर स्थित दूब कुंड नामक स्थानों से आयी हैं। इनमें से खंडितों के एवं दो के प्राप्ति स्थल अज्ञात हैं। ये चित्तीदार लाल पत्थर, विन्ध्य बलुए पत्थर, श्वेत संगमरमर, मूंग सदृश्य हरे, सुरमई एवं मटीले घिसुआ प्रस्तरों से गढ़ी गई हैं।

दो चौबीसी के खंडित भाग (एस ८४२ व एस ७२०) हैं, जिन पर क्रमशः ८ व ६ ध्यानस्थ जिन ही शेष हैं। इनमें से प्रथम का मूलनायक पूर्णतया अप्राप्य है। दूसरी संख्या अंश किसी किसी चौबीसी का पार्श्वभाग है। मथुरा से उपलब्ध चतुर्विंशतिपट्ट जे-५७ है, यह फरवरी १८९० को वहाँ के सुप्रसिद्ध कंकाली टीले से निकली थी। संग्रहालय पंजी के अनुसार इसे ९ वीं शती की माना गया है। किन्तु इस पर उत्कीर्णित अक्षरों की बनावट एवं मूलनायक तथा अन्य जिनों की मुखाकृति के आधार पर उत्तर गुप्तकालीन कलाकृति लगती है। इस पर छत्र एवं कैवल्य वृक्ष

१. सोमपुरा शिल्प संहिता पृ. १७२
२. जे-१ आर्यावर्ती
३. अ आयागपट्ट जे. २५३—पार्श्वनाथ तथा दो सेवक (लेखयुक्त)
ब ,, जे. २५०—तीर्थंकर मध्य तथा मुनि (बेल पर)
स ,, जे २५२—तीर्थंकर (मध्य) लेखयुक्त।
राज्य संग्रहालय लखनऊ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का सुन्दर विलेखन है जो मध्यकाल में अति प्रिय बना। प्रभामंडल सादा है किनारे पर दो रेखाओं के मध्य बिन्दुपंक्तियों के द्वारा केवल सजा है। सभी तीर्थंकर पद्मासीन ध्यानलीन हैं। मूलनायक को छोड़कर सभी के मुख घिसे हैं। इसका आकार १०५×५० से. मी. है। चरणापिभिलेख के कुछ अक्षर "रि क स प्रतिमा कारित"। इस प्रकार यह संग्रह की सर्व प्राचीन चौबीसी है।

तदुपरान्त श्रावस्ती बहराइच से प्राप्त चौबीसी (६६-५९) है, जिसका आकार ५८×८३ से. मी. तथा मूंग के रंग के पत्थर से बनी है। इस पर २३ लघु जिनध्यानस्थ हैं, बायीं तरफ जगह छोड़ दी गई है। मूलनायक को जोड़कर चौबीस तीर्थंकर हैं। त्रिछत्र पर देवदुन्दुभिवादक तथा नीचे पद्मपत्रों से अलंकृत प्रभामंडल है। इसी के पास पद्माधार पर प्रत्येक ओर एक एक हाथी है, बायीं ओर के हाथी पर आगे सवार तथा पीछे शेर का मुख तथा सामने के दो पंजे हैं। क्यों ? मैं नहीं कह सकता। दूसरी ओर दम्पति सवार है। नीचे त्रिभंग मुद्रा में वस्त्राभूषण से समलंकृत चंवरधारी भगवान ऋषभदेव पर चंवर ढुला रहे हैं। मोती व फूलों से कढ़ी हुई गद्दी आसन पर बिछी है। नीचे सिंहासन के दोनों ओर सिंह बैठे हैं, बीच में धर्म-चक्र के समीप ही इनका लांछन बैल विराजमान है। सिंहासन के बायीं तरफ नमस्कार मुद्रा में यक्ष या गृहस्थ तथा दूसरी ओर गादी पर चतुर्भुजी अर्द्धपर्यंकासन में चक्रेश्वरी बैठी है, जिनके ऊपर दो हाथों में चक्र तथा नीचे शंख एवं अस्पष्ट वस्तु है। दीक्षावृत्तभी कुछ तीर्थंकरों पर बना है।

तीसरी चौबीसी ९०×५३ से. मी. की घिसी हुई है। इसका प्राप्तिस्थान अज्ञात है। नीचे एक आकृति नृत्य कर रही है—यह कौन हैं ? मैं नहीं कह सकता। नीचे सिंहासन पर ऋषभदेव उत्थितासन में दर्शाए गये हैं। दोनों ओर चंवरधारी तथा विद्याधर माला लिये समुपस्थित हैं। दोनों ओर बारह-बारह जिन बैठे हैं, मूलनायक को लेकर पच्चीस जिन हो जाते हैं।

चौथी चौबीसी (जी. ३२२ व ६६-२७३) है जिसका माप १ मीटर ७×७० से. मी है तथा विन्ध्याचल के पत्थर से बनी है। मूलनायक ऋषभदेव कायोत्सर्ग मुद्रा में विवस्त्र खड़े हैं, शिर नहीं है। श्रीवत्स मूलनायक सहित सभी बना है। परिचय चिन्ह बैल का अभाव है, लेख भी नहीं है। इस समय मूलनायक मिला कर बाईस तीर्थंकर हैं। ऊपरी भाग खंडित है, ऊपर शेष हैं। बायीं तरफ सबसे नीचे अर्हन्त तथा उससे तीसरे खड़े एक सर्पफण वाले सुपार्श्वनाथ भी हैं। इसके समानान्तर भी खड्गासन में एक अर्हन्त दिखलाये गये हैं। दायीं तरफ नीचे चतुर्भुजी चक्रेश्वरी नरवाहना है जिसे डा. यू. पी. शाह ने अप्रतिरथा के रूप में भी पहचाना है। सिंहासन सिंहों पर है जिनके मुँह एक दूसरे के विपरीत हैं तथा मध्य में चक्र है जिससे वस्त्र पहरा रहा है। चंवरधारियों की मुखाकृति, वस्त्राभूषणादि के आधार पर यह कृति चंदेलयुगीन लगती है तथा महोबा से १९३५ में यहाँ लाई गई है।

पाँचवीं चौबीसी (जे. ९४९) भी बड़ी मनोज्ञ है तथा कटि पर अधोवस्त्र का चिन्ह सुस्पष्ट है। अतः यह निःसंदेह श्वेताम्बरी कृति सिद्ध होती है। इसका आकार १ मी. ३×४० से. मी. है तथा सुरमई रंग के पत्थर से बनी है। १५ तीर्थंकर तो स्पष्ट हैं, शेष का आभास है तथा कुछ अंश क्षतिग्रस्त हैं। प्रभामंडल अलंकृत है, कैवल्य वृक्ष है, कंधे पर लटें हैं, मूलनायक के हाथ और पैर टूटे हैं। पीठिका पर बायीं तरफ तीन सर्पफणों की छत्र-छाया में चतुर्भुजी पद्मावती, जिसके दो हाथ बाकी दो पूर्णतया लुप्त हैं। दायीं तरफ चतुर्भुजी नरवाहना चक्रेश्वरी आसीन है। त्रिभंगमुद्रा में चंवरधारी हैं। प्रतिमा प्रभावोत्पादक है किन्तु दुर्भाग्य से इसका प्राप्ति स्थल अज्ञात है। किन्तु अपने युग की कला का उत्तम निर्देशन है।

छठी चौबीसी (६६-२९५) जिसका आकार ४३ × ३३ से. मी. तथा मटीले रंग की है, सभी जिन ध्यानस्थ, मूलनायक का मुख तथा नीचे टूटी है, कुछ तीर्थंकर भी घिस चुके हैं, बायीं और दायीं ओर तीन-तीन की तीन पंक्तियाँ हैं, जो १८ हैं ऊपर तीन बायें तथा २ दायें हैं। कुल २३ व मूलनायक मिलाकर चौबीस हैं। मूलनायक पर त्रिछत्र है, जिस पर सामने की ओर घिसी ध्यानस्थ प्रतिमा का आभास है, पीछे दोनों ओर एक विद्याधर है। जो दोनों हाथों से कलश को लिए हुए अंकित है। कृति लगभग ९ वीं शताब्दी की लेख रहित है। प्राप्ति स्थान अज्ञात है।

तत्पश्चात् आती है चौबीसी (जे. ८२०) जो दूध से श्वेत संगमरमरी पत्थर पर तराशी गई है। यूं तो संग्रहालय में ऐसी ही धातु की तरह बजने वाली मूर्तियाँ भी हैं किन्तु इसमें आवाज नहीं आती है। मूलनायक विवस्त्र खड्गासन में खड़े हैं, यहाँ पर दोनों ही ओर ग्यारह-ग्यारह ध्यानालीन अर्हन्त हैं, एक मूलनायक कुल तेईस हैं, पता नहीं क्यों ? संभव है स्थानाभाव के कारण एक नहीं बनाया गया हो। दायीं तरफ भी एक लघु प्रतिमा है, इनके मुख से तेजस्विता टपकती है। शारीरिक गठन भी सौष्ठवपूर्ण है। तथा मूलदेव रूपवान, यौवन सम्पन्न दर्शाये गये हैं। चंवरधारी त्रिभंग मुद्रा में मूलनायक की ओर मुख किये खड़े हैं। इन्हीं के बीच में बायीं तरफ स्त्री तथा दायीं तरफ पुरुष वंदना मुद्रा में बैठे हैं, जो यक्ष-यक्षी हो सकते हैं। क्योंकि इनके समानान्तर अन्य तीर्थंकर बने हैं। वैसे यक्ष-यक्षी नहीं माने तो उपासक उपासिका माने जा सकते हैं। मूलनायक की हथेली कमलपत्र है जिसे यहाँ पुराने रजिस्टरों में तश्तरी (Discs) लिखा पाते हैं। प्रभामंडल सजावटयुक्त है, त्रिछत्र है जिसपर आकर्षित ढंग से कीर्तिमुख मुक्तालड़ियों को उखलते बने हैं। ऊपर देव दुंदुभिवादक खंडित हैं। दोनों ओर हाथी हैं जिनके सवार आज टूट चुके हैं। इन्हीं के नीचे हवा में उड़ते माला लिये हुवे विद्याधर दम्पत्ति दोनों ओर लक्षित हैं। कैवल्य वृक्ष की पत्तियां भी बनी हुई हैं। इसी प्रतिमा की चरण चौकी पर देवनागरी लिपि में दायीं तरफ पंचाक्षरी मंत्र अंकित है तथा मध्य में गोलाकार शान्ति यंत्र है। यन्त्र के उपसमीप ही बायीं तरफ मुंह किये बैल बैठा है। इसी के ऊपर "असि आ ऊ सा स्वाहा" अर्थात् अर्हन्त सिद्ध, उपाध्याय एवं साधु का वंदन है।[4] इस प्रकार की मंगल भावनाओं से युक्त चरणपीठिका अनुपम माने जाने की अधिकारिणी नहीं है क्या ?

---

४. इसे समझने में डा. प्रद्युम्न कुमार जैन अधुना नैनीताल कालेज के प्रधानाचार्य का मैं हृदय से आभार स्वीकार करता हूं। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org